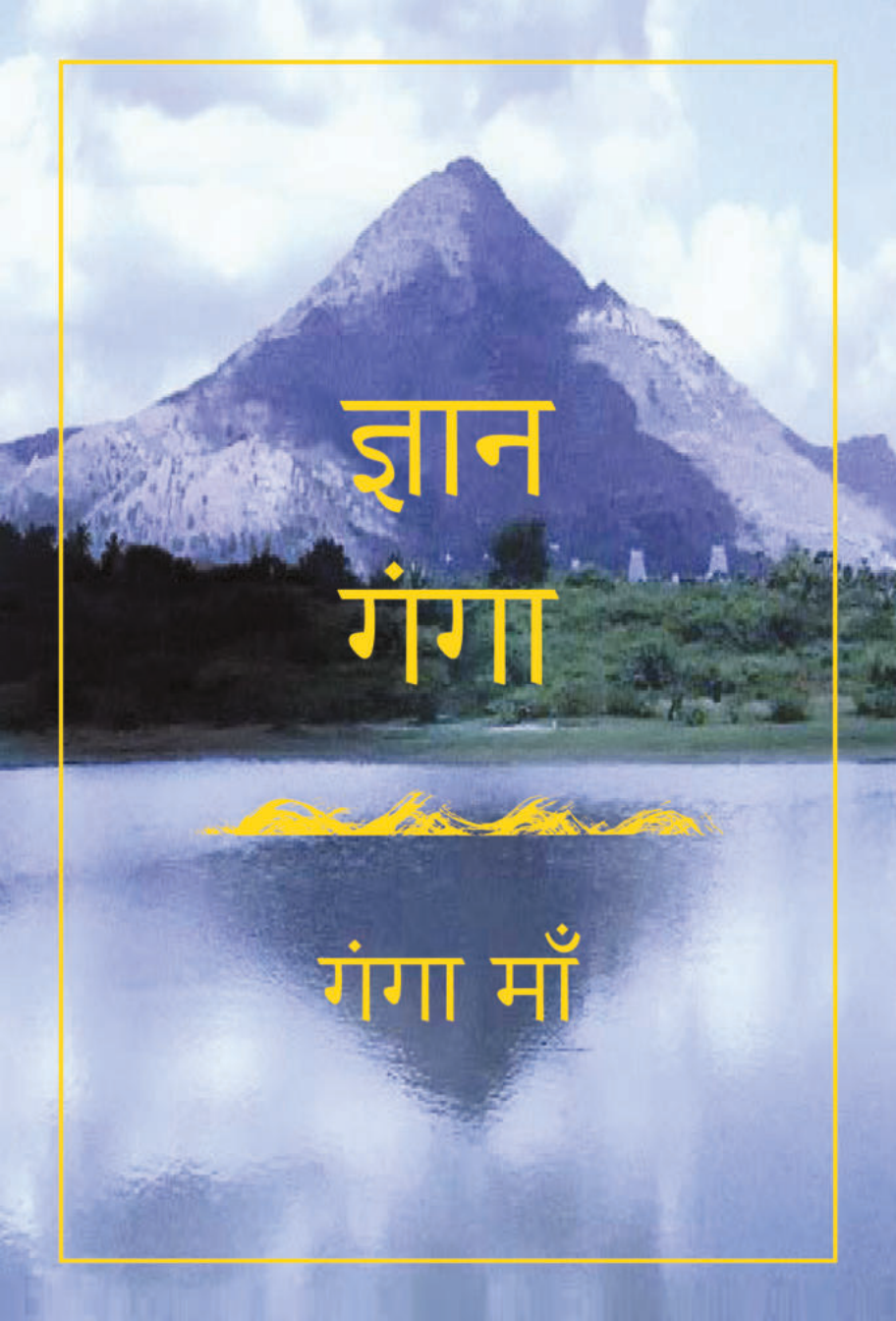

ज्ञान गंगा

गंगा माँ

गंगा माँ जिन्हें स्नेहपूर्वक और श्रद्धापूर्वक 'अम्मा' कहा जाता है, जिन्हें भगवान की कृपा प्राप्त है, मानव रूप में 'सत्य' का जीवंत स्वरूप हैं। करुणा का अनंत सागर, अम्मा 'गुरु तत्व' का साकार रूप हैं जिनकी असीम कृपा ने अनेकों के जीवन को स्पर्श किया और रूपांतरित कर दिया है। अम्मा, माँ के रूप में गुरु का एक दुर्लभ संयोग हैं, जो शुद्ध प्रेम और सर्वोच्च ज्ञान से संपन्न हैं। उनकी दिव्य सन्निधि में स्वाभाविक रूप से शांति और मौन का अनुभव होता है।

अम्मा के अपने शब्दों में, 'गुरु आपके प्रश्न का उत्तर नहीं देते, बल्कि आपको अपने भीतर के उत्तर तक ले जाते हैं।' यह अनेक भक्तों और साधकों का अनुभव रहा, जिन्होंने सच्चे मन से स्पष्टता पाने के लिए विविध प्रश्न किए। 'ज्ञान गंगा' में संकलित 101 उपदेश अम्मा के हृदय से निकले कुछ उत्तर हैं, जो सीधे प्रश्नकर्ताओं के हृदय में प्रवाहित हुए, अज्ञान को भंग कर प्रत्यक्ष ज्ञान का संचार किया।

ज्ञान गंगा

गंगा माँ

© *प्रथम संस्करण: दिसंबर 2025*

प्रकाशितकर्ता: हृदय क्षेत्रम् ट्रस्ट
110/73, आर.एस.नगर,
तिरुवन्नामलै - 606 603
तमिलनाडु – भारत

publications@hridayakshetram.org

www.hridayakshetram.org

भूमिका

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से, इस संसार के सभी लोगों को तीन विशिष्ट श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

- जो सत्य से अनभिज्ञ हैं (अज्ञानी)
- वे साधक जो सत्य को जानने का प्रयास कर रहे हैं (जिज्ञासु), और
- जो सत्य को जानते हैं (ज्ञानी)

दिलचस्प बात यह है कि जो लोग पूर्ण अज्ञान में हैं और जो आत्मज्ञान में स्थित हैं, उन दोनों को इस संसार के स्वभाव को लेकर कोई संदेह नहीं होता। केवल जिज्ञासु ही, जो अनिश्चितताओं से ग्रस्त है, आगे प्रश्न करता है।

एक सच्चे साधक को ईश्वरीय कृपा द्वारा गुरु के पास ले जाया जाता है। जब वह सद्गुरु के संपर्क में आता है, तो साधक धीरे-धीरे अन्य सभी प्रयासों को छोड़ देता है, विवेक या वैराग्य का एक स्वस्थ स्तर प्राप्त करता है, और गुरु के चरणों में समर्पण करने को तत्पर हो जाता है और स्वयं को गुरु की शिक्षा और मार्गदर्शन के अधीन कर लेता है। दूसरे शब्दों में, साधक अन्य सभी को त्यागकर स्वयं को चुनता है। कठोपनिषद में एक प्रसिद्ध कथन है, **'यं एव एषः वृणुते तेन लभ्यः'**, अर्थात् जो केवल स्वयं को चुनता है, वह स्वयं को प्राप्त करता है।

पवित्र मंदिर नगरी तिरुवन्नामलाई में हमें हमारी प्रिय गंगा माँ मिलती हैं, जिन्हें स्नेहपूर्वक "अम्मा" कहा जाता है, जो प्रायः सामान्य दृष्टि से ओझल रहती हैं। हालाँकि, उन्हें उन आँखों से आसानी से देखा जा सकता है जो सर्वोच्च ज्ञान की प्यासी हैं। पिछले कुछ वर्षों में, कई भक्त अपनी शंकाओं का समाधान चाहते थे और अपनी आध्यात्मिक साधनाओं के संबंध में स्पष्टीकरण चाहते थे। अम्मा द्वारा भक्तों को दिए गए कुछ उपदेश/मार्गदर्शन ने इस पुस्तक को आकार दिया है।

इस संक्षिप्त ग्रंथ में सम्मिलित ज्ञान के मोती उन साधकों के लिए हैं जो निरंतर सत्य की खोज में लगे हैं और स्थायी आत्मनिष्ठा प्राप्त करना चाहते हैं। ये सूक्तियों के रूप में हैं, जिन्हें संस्कृत में 'सूत्र' भी कहा जाता है - छोटे वाक्य जो बहुत अर्थ रखते हैं। स्पष्ट है कि, ये सामान्य पठन के लिए नहीं हैं। ये वाक्य मनन के लिए हैं, और किसी को अपने अस्तित्व के अंतरतम में गहराई तक ले जा सकते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ये सूत्र अम्मा के सत्य के प्रत्यक्ष अनुभव को प्रकट करते हैं, जहाँ वह आनंदमय आत्मा में मग्न रहती हैं।

मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि सभी सच्चे साधक इस पुस्तक से अधिकतम लाभ प्राप्त करें और आध्यात्मिक विकास के माध्यम से मानव जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करें।

हरि ओम्।
सुब्बू वेंकटकृष्णन

विषय सूची

गुरु 1
भक्ति.....3
समर्पण 4
सच्चा ज्ञान.....5
मृत्यु 8
आत्मन् 9
आध्यात्मिक पथ में बल 11
साधकों के लिए मार्गदर्शन 12
ज्ञानी 15
कृपा.....17
करुणा.....19
जीव.....20
मन की प्रवृत्तियाँ.....23
ज्ञान 25

गुरु

1. सत्य तक पहुँचने के केवल दो मार्ग हैं — या तो सम्पूर्ण जगत को अपना गुरु देखो, या अपने गुरु को सम्पूर्ण जगत के रूप में देखो।

2. गुरु (आत्मन् के रूप में) कृपा के माध्यम से साधक को अपनी ओर चुंबक की तरह खींचते हैं, और गुरु (आत्मा) की ओर यह सहज और स्वाभाविक गति ही मार्ग है। गुरु, कृपा और मार्ग एक हैं।

3. गुरु द्वैत का समर्थन नहीं करते। यदि कोई अपने भीतर द्वैत रखता है, तो गुरु उसे मिटा देते हैं।

4. गुरु/ईश्वर से सच्ची निकटता उन्हें यह स्वतंत्रता देना है कि वे आपको अपनी इच्छानुसार ढाल सकें।

5. गुरु की कृपा से अनेक जन्मों की शिक्षाएँ (सबक) थोड़े समय में ही दी जा सकती हैं।

6. यदि भीतर पूर्ण विवेक है (सही भेद करने की क्षमता), तो बाहर किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है क्योंकि विवेक ही आंतरिक गुरु है।

7. गुरु और उनकी शिक्षाओं में कोई भेद नहीं है। गुरु के प्रति प्रेम, उनकी शिक्षाओं के प्रति प्रेम है, और उनकी शिक्षाओं के प्रति प्रेम स्वाभाविक रूप से गुरु के प्रति प्रेम की ओर ले जाएगा।

8. गुरु तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं देते, वास्तव में वे तुम्हें तुम्हारे भीतर के उत्तर तक ले जाते हैं।

9. तुम अपने शास्त्र-ज्ञान से गुरु को प्रसन्न नहीं कर सकते। गुरु को 'तुम' चाहिए।

भक्ति

10. सत्य की आकांक्षा स्वयं ही गुरुभक्ति की ओर ले जाती है। जब सत्य के लिए प्यास तीव्र होती है और जब कृपा आत्मानुभूति प्रदान करती है, तब हृदय में कृतज्ञता पुष्पित होती है, जो स्वयं गुरुभक्ति है।

11. सच्ची भक्ति तब होती है जब भक्त का अस्तित्व मिट जाता है और केवल ईश्वर ही शेष रहता है।

12. ज्ञान भक्ति के बिना अधूरा रहता है, और भक्ति ज्ञान के बिना पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकती। जब दोनों एक साथ आते हैं, तभी पूर्णता होती है।

समर्पण

13. पूर्ण होने से पहले हमें शून्य होना होगा।

14. जब चित् (चेतना) का संपर्क जड़म (अहंकार/मन) से होता है, तो वह (जड़म) अपना स्वभाव खो देता है। यही समर्पण है।

15. जब कोई गुरु या ईश्वर के प्रति बिना शर्त समर्पण करता है, तब पूर्ण समर्पण कृपा के माध्यम से स्वयं घटित होता है। जीव का दायित्व बिना शर्त समर्पण में रहना है और फिर कृपा अपनी शक्ति से पूर्ण समर्पण को घटित कराती है। कृपा हमेशा बिना शर्त होती है। केवल जब हम बिना किसी शर्त के समर्पण में होते हैं, तभी हम उसे पूर्ण रूप से ग्रहण कर पाते हैं।

16. 'शिष्यत्व' (शिष्य होना) वह गुण है जिसमें कोई यह नहीं चाहता कि वह एक अलग इकाई (पृथक सत्ता) के रूप में अस्तित्व में बना रहे।

सच्चा ज्ञान

17. 'आत्मज्ञान' ही एकमात्र ऐसी वस्तु है जो सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध है। यह कोई नई वस्तु नहीं है जिसे सिखाया या किसी के हाथ से दिया जा सके।

18. जब वास्तविक ज्ञान का उदय होता है, तब भक्ति, समर्पण और विनम्रता स्वाभाविक रूप से भीतर खिलते हैं, जैसे किसी वृक्ष की शाखाएँ फल लगने पर स्वयं झुक जाती हैं।

19. यह जानना कि 'मैं कौन हूँ', ईश्वर को जानना है, और ईश्वर को जानना, यही जानना है कि 'मैं कौन हूँ'।

20. यदि मैं स्वयं को किसी भी चीज़ से, यहाँ तक कि ईश्वर से भी, पहचानता हूँ, तो मैं सीमित हो जाता हूँ। जब कोई भी पहचान नहीं रहती, तो मुझे अपने शाश्वत और असीमित स्वरूप का बोध होता है।

21. अज्ञेय को जानने के लिए, पहले यह समझना आवश्यक है कि तुम वह नहीं जानते जो तुम सोचते हो कि तुम पहले से ही जानते हो। तुम्हें अज्ञान की स्थिति में रहना होगा और जो कुछ भी तुम पहले से जानते हो उसे छोड़ देना होगा।

22. कारण और प्रभाव केवल इसी सापेक्षिक तल पर हैं। किसी कारण को पकड़े रहना भ्रम को पकड़े रहना है। तुम्हारे जन्म का भी कोई कारण नहीं है। तुम कभी जन्मे ही नहीं।

23. जागृति तभी होती है जब कोई स्वप्न हो। जब स्वप्न देखने वाला मिल जाता है, तो स्वप्न समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार, जीवन का स्वप्न भी तब समाप्त होता है जब स्वप्न देखने वाले का स्रोत मिल जाता है। सत्य में न स्वप्न है, न जागृति।

24. बंधन से मुक्त होने का एकमात्र उपाय आसक्ति की असत्यता को समझना है। तुम्हारे पास न कुछ पकड़ने को है, न कुछ छोड़ने को। जैसे हो, वैसे ही बने रहो। आत्मा का मूल स्वभाव ही अनासक्ति है।

25. चाहे कोई उच्चतम साधना करे या अत्यंत स्थूल व्यवहार, आत्मा एक समान रहती है। न तो आत्मा उच्चतम साधना से कुछ प्राप्त करती है और न ही स्थूल कर्मों से कुछ खोती है। यह जानकर अपनी साधना जारी रखो।

26. जब द्रष्टा देखा जाता है, तब मैं मुक्त हूँ। जब वस्तुएँ देखी जाती हैं, तब मैं बंधा हूँ।

27. एकत्व बाहरी नहीं है। दो वस्तुएँ एक कैसे हो सकती हैं? यह कभी भी शरीर, मन या अहंकार के स्तर पर नहीं हो सकता। यह जागरूकता के स्तर पर है जहाँ एकत्व भी नहीं है, बस एक ही है।

28. ज्ञानम् (स्वयं के बारे में ज्ञान) ज्ञान पर बहस करने के लिए नहीं, बल्कि अनुभवात्मक ज्ञान के लिए है।

29. केवल पूर्ण ज्ञान ही राहत और मुक्ति देता है।

मृत्यु

30. जीने की इच्छा मृत्यु के भय का कारण है।

31. मृत्यु का भय भी एक विचार मात्र है, जबकि मृत्यु एक प्राकृतिक घटना है।

32. यदि तुम जन्म के कारण को स्वीकार करते हो, तो उसका प्रभाव मृत्यु है।

33. जब भी अहंकार उस चीज़ पर पकड़ खोता है जिसे वह 'मेरा' समझता है, तो यह अहंकार की एक छोटी सी मृत्यु है।

34. अचेतन अहंकार की मृत्यु शरीर की मृत्यु है। सचेतन अहंकार की मृत्यु समाधि है।

आत्मन्

35. आत्मा न आसक्त है, न विरक्त। वह जैसी है वैसी ही है।

36. चेतना से दूर मेरा पृथक अस्तित्व स्वार्थ है। आत्मा का साक्षात्कार ही निःस्वार्थता है।

37. हम आत्मा का अनुभव नहीं कर सकते क्योंकि आत्मा ही सभी अनुभवों का अनुभव है।

38. हम भगवान (आत्मा) के बारे में चिंतन नहीं कर सकते क्योंकि वे विचारणीय वस्तु नहीं हैं। अन्य सभी वस्तुएँ विचार के अंतर्गत आ सकती हैं। वह स्वयं हमारे भीतर का अस्तित्व है। अन्य सभी वस्तुएँ विचार, अनुभूति, अनुभव या भोग हो सकती हैं, जिनका उनसे पृथक कोई अस्तित्व नहीं है।

39. तृप्ति (संतोष) आत्मा का स्वभाव है, शरीर या मन का नहीं।

40. यदि इस संसार में सब कुछ पूर्ण होता, तो कोई भी ईश्वर या आत्मा की खोज नहीं करता। चूँकि संसार अपूर्ण है, इसलिए हम पूर्णता की खोज करते हैं जो ईश्वर या आत्मा है।

41. केवल 'मैं' के अस्तित्व के कारण ही आध्यात्मिक यात्रा संभव है। 'मैं' सभी आध्यात्मिक प्रयासों और साधनाओं का साक्षी हूँ, और 'मैं' अंततः स्वयं को प्राप्त करता हूँ।

आध्यात्मिक पथ में बल

42. वास्तविक शक्ति अहंकार की नहीं, बल्कि सत्य की होती है।

43. जब निर्गुण 'मैं' का ध्यान किया जाता है, तो मन स्थिर हो जाता है। लेकिन मन वहाँ नहीं रुक सकता और किसी बाहरी वस्तु (विषय) को पकड़ने के लिए बल के साथ बाहर आ जाता है। मन को पुनः शुद्ध 'मैं' की ओर लाना वैराग्य है।

44. आंतरिक शक्ति ज्ञान के प्रकाश से वस्तुओं को देखना है।

45. भले ही संसार डगमगा जाए, अपना ध्यान अविचल सत्य पर बनाए रखें। यही तुम्हारी एकमात्र सुरक्षा है।

साधकों के लिए मार्गदर्शन

46. अधिक से अधिक शास्त्र पढ़ने की इच्छा का कारण एक चंचल बुद्धि है। जब यह रुक जाती है, तभी व्यक्ति वास्तव में अंतर्मुखी हो सकता है और आत्मा में स्थित होने की संतुष्टि प्राप्त होती है।

47. 'श्रद्धा' (जागरूकता) न तो एकाग्रता है और न ही किसी वस्तु पर ध्यान केंद्रित करना। जब मन अपने सभी ध्यान बिंदुओं (एकाग्रता) को खो देता है, तो तुम स्वाभाविक रूप से जागरूकता में होते हो। उस जागरूकता में सब कुछ समाहित है।

48. 'सुम्मा इरु' (स्थिर रहो) न तो स्वयं के लिए और न ही शरीर के लिए, बल्कि अहंकार के लिए एक निर्देश है।

49. पूर्णता ही वास्तविक संन्यास देती है, न कि भीतर किसी प्रकार का अभाव।

50. अनुशासन का अर्थ है मन की प्रवृत्तियों (वासनाओं) के साथ चलने से बचना। अहंकार को जागरूकता की सतर्क दृष्टि में रखना चाहिए। सभी बाहरी और योगिक अनुशासन इसके अंतर्गत आते हैं। यह आंतरिक अनुशासन प्रत्यक्ष है और आवश्यक परिवर्तन लाने का एकमात्र मार्ग है।

51. 'मैं ब्रह्म हूँ' की धारणा को उस व्यक्ति (अहं/मन) के साथ न मिलाएँ जो सोचता है कि वह स्वयं के बारे में जानता और समझता है। जब जानने वाला अस्तित्वहीन होता है, तो जो अस्तित्व में होता है वह केवल ब्रह्म है।

52. संतों और ऋषियों की जीवनियाँ पढ़ते समय, कभी-कभी, व्यक्ति अनजाने में अनुकरण में पड़ सकता है। मन तुलना करता है और झूठे विचार बनाता है, यह मानते हुए कि उसे मुक्ति पाने के लिए संत के समान ही कार्य करने चाहिए, मानो यह एक निश्चित मार्ग हो। प्रत्येक व्यक्ति की यात्रा पूरी तरह से अनूठी होती है। बल्कि, व्यक्ति को संतों के जीवन के बारे में पढ़ना चाहिए, उससे

प्रेरणा लेनी चाहिए और उसे अपनी साधना में लगाना चाहिए।

53. जब मुक्ति एक इच्छा होती है, तो इच्छुक व्यक्ति कुछ पाने के लिए बना रहता है। जब यह एक आवश्यकता होती है, तो बंधन से मुक्त होने की जरूरत स्वाभाविक होती है।

54. जब मैं सत्य से प्रेम करता हूँ और उसकी प्राप्ति मेरे लिए एक आवश्यकता बन जाती है, तो उस तक पहुँचने वाले सभी कर्म पूरी तरह से सहज होते हैं।

55. सही कर्म क्या है? जब भी मैं एक अलग इकाई के रूप में अपनी पहचान खो देता हूँ, तो सही कर्म मेरे माध्यम से होता है क्योंकि कर्ता अनुपस्थित होता है।

56. केवल तभी जब मैं सभी सांसारिक रुचियों से तृप्त हो जाऊँ, मेरा पूरा ध्यान आत्मा पर केंद्रित होगा।

ज्ञानी

57. शुद्ध चेतना के पास अपने अस्तित्व के बारे में बताने के लिए हाथ, पैर या मुँह नहीं हैं। सौभाग्य से, ज्ञानी, जो चेतना से भिन्न नहीं है, अपने अनुभव से बताता है कि वह अवस्था क्या और कैसी है।

58. ज्ञानी एक ही समय में पूर्ण और शून्य होता है। वह मन से पूरी तरह शून्य और ब्रह्म से पूर्ण होता है।

59. ज्ञानी विमुख नहीं होता। वह केवल उन्हीं को विमुख प्रतीत होता है जिनका मन केवल भेद को ही जानता है। विमुखता केवल तभी देखी जाती है जब भेद होता है। विमुखता भी एक मानसिक अवस्था है, जबकि ज्ञानी की अवस्था सर्वव्यापी होती है, जहाँ न तो कोई भेद होता है और न ही विमुखता।

60. हम अपना जीवन अपनी मतों, आसक्तियों और इच्छाओं के साथ जीते हैं। ये जीवन के प्रति प्रतिरोध हैं। जीवन एक दिशा में बहता है, लेकिन हम चाहते हैं कि यह अलग हो। जबकि एक ज्ञानी पूरी तरह से जीवन के प्रवाह के साथ बहता है।

61. सबसे आनंदमय अनुभव, भले ही वह आध्यात्मिक ही क्यों न हो, ज्ञानी के लिए वह भी एक परेशानी ही है।

कृपा

62. कृपा आत्मशक्ति है (स्वयं की शक्ति) जो आत्मा की पहचान कराती है, उसमें स्थिर कराती है और अहंकार का पूर्णतः नाश करती है। कृपा का साक्षात् रूप गुरु है।

63. कृपा का कार्य है 'मैं कौन नहीं हूँ' को निरंतर प्रकट करना।

64. यह समझने का केवल एक ही संकेत है कि कृपा बिना शर्त समर्पण के बाद हमारे जीवन में प्रवेश कर चुकी है। जब कृपा कार्य करना शुरू करती है, तो जीवन हमारी सभी योजनाओं और अपेक्षाओं से परे अपने आप घटित होने लगता है। हम किसी भी चीज़ पर अपनी पकड़ पूरी तरह से खो देते हैं; या यूँ कहें कि कृपा सब कुछ अपने अधीन ले लेती है और हमें उसका साक्षी बना देती है।

65. मन और बुद्धि केवल आत्मा के बारे में अनुमान ही लगा सकते हैं। केवल आत्मा की शुद्ध बुद्धि ही इसे प्रकट कर सकती है और भीतर से "हाँ" (दृढ़ विश्वास) दे सकती है।

66. आत्म-साक्षात्कार किसी भी समय हो सकता है यदि आत्मा की शुद्ध बुद्धि अपने भीतर अपनी उपस्थिति का आह्वान करके यह प्रकट करे कि 'मैं कौन हूँ'।

67. जो कुछ भी आपके सामने प्रकट होता है वह कृपा के क्षेत्र में है। इसलिए, उन सभी को आशीर्वाद के रूप में स्वीकार करें।

करुणा

68. करुणा वह कर्म है जिसमें देने वाला कोई 'दाता' नहीं होता।

69. करुणा की सर्वोच्च अभिव्यक्ति गुरु तत्व है। (गुरु तत्वम्)

70. सच्ची करुणा, सच्चे वैराग्य से उत्पन्न होती है।

71. ईश्वर सहानुभूति के कारण तुम्हें करुणा नहीं दिखा सकते। वह केवल तुम्हारी सहनशीलता (तितिक्षा) को देखकर ही करुणा प्रकट करते हैं।

जीव

72. जीव स्वयं ईश्वर है। जीव अपने शरीर के साथ, अपने आस-पास के लोगों के साथ अपनी पहचान 'मेरा' मानकर, खुद को इस जीवनकाल तक सीमित रखता है। जब ये पहचानें छोड़ दी जाती हैं, तो जो जीव के रूप में शेष रह जाता है वह ईश्वर से भिन्न नहीं होता।

73. प्रत्येक जीव अपने कर्मों का स्वामित्व तो लेता है, लेकिन जब परिणाम प्रतिकूल होते हैं, तो ईश्वर से प्रश्न करता है।

74. जब भी हम अहंकार के साथ असफल होते हैं, तो हम दुखी होते हैं। जब भी हम अहंकार के बिना असफल होते हैं, तो हम खुश होते हैं। जब हम अहंकार के साथ असफल होते हैं, तो हम असफलता को स्वीकार नहीं करते, बल्कि जीतने की इच्छा रखते हैं, और इसलिए हम दुखी होते हैं। जब हम अहंकार के बिना असफल होते हैं, तो हम असफलता को स्वीकार कर लेते हैं और

सफलता की कोई उम्मीद नहीं रखते, इसलिए हम खुश होते हैं। या, हम समझते हैं कि असफलता अहंकार के लिए है, मेरे (स्वयं) के लिए नहीं।

75. जब भय, संदेह, अविश्वास और दुःख हो, तो समझो कि अहंकार काम कर रहा है। जब शांति, संतोष और आनंद हो, तो जान लो कि आत्मा प्रकाशित हो रही है और अहंकार अनुपस्थित है।

76. केवल जब अहंकार की कुछ भी करने में पूर्ण असमर्थता का बोध हो जाता है, तभी वह (अहंकार) कृपा की शक्ति के आगे झुक जाता है। अहंकार की शक्तिहीनता का अनुभवात्मक ज्ञान भी कृपा द्वारा ही दिया जाता है क्योंकि अहंकार कभी भी अपनी हार स्वीकार नहीं कर सकता।

77. वस्तुएँ कर्ता ('मैं' - अहंकार) के भीतर स्थित होती हैं। कर्ता का त्याग करने से, वस्तुओं के अस्तित्व की वास्तविकता स्वाभाविक रूप से लुप्त हो जाती है। वास्तविक त्याग यह बोध है कि कर्ता कभी अस्तित्व में ही नहीं था।

78. वस्तुगत वास्तविकता का कारण है वैयक्तिक वास्तविकता (‘मैं’ की भावना)।

79. 'मैं' (व्यक्तित्व) की धारणा हमेशा अतीत से जुड़ी होती है, अपनी ही कहानी में अटकी रहती है। जबकि वर्तमान में उसकी कोई कहानी नहीं होती।

80. अहंकार कोई भूल नहीं है, यह एक झूठा आवरण है। इसको समझना ही ज्ञान *(ज्ञानम्)* है।

81. 'जीव समाधि' तब होती है जब हृदय में अहंकार विलीन हो जाता है। हमें अपने भीतर के जीव के लिए, जीवित रहते हुए, समाधि का निर्माण करना होता है। ऐसे लोगों के लिए, इससे क्या फर्क पड़ता है कि शरीर का दाह संस्कार किया जाए या दफनाया जाए?

मन की प्रवृत्तियाँ

82. किसी भी चीज़ को (मन से) थामे रखना भूतकाल की बात है। सत्य हमेशा वर्तमान में होता है।

83. जब किसी कार्य की आवश्यकता न हो, तब उसे करने की इच्छा कर्म को आमंत्रित करती है। जब कोई कदम उठाने की आवश्यकता हो, तब स्वयं को निष्क्रिय रखना भी कर्म को आमंत्रित करता है।

84. यदि मन को केवल आत्मा से उत्पन्न होने वाली एक शक्ति के रूप में पहचाना जाए, तो कोई चिंता नहीं होगी।

85. मन का स्वभाव बहिष्करण है। जागरूकता सर्व-समावेशी है।

86. बुद्धि और मन वस्तुओं को विभाजित करते हैं; हृदय वस्तुओं को जोड़ता है।

87. शरीर की प्रत्यक्ष क्रिया (अंगों की गति) वास्तविक कर्म नहीं है। 'मैं कर्ता हूँ' यह विचार इसे कर्म बनाता है।

88. अपेक्षा और कर्म का विचार ही कर्म को बांधता है, परंतु कर्म स्वयं में कोई बंधन नहीं लाती।

89. भीतर और बाहर का अस्तित्व केवल शरीर या मन तक ही सीमित है, जो आधार बिंदु के रूप में कार्य करते हैं। जब कोई आधार बिंदु ही नहीं है, तो भीतर कहाँ है और बाहर कहाँ है?

ज्ञान

90. अचेतन जीवन अज्ञान है। एक अत्यंत सचेतन जीवन ज्ञान है।

91. जब मैं सचमुच जानता हूँ कि 'मैं नहीं जानता', तो मैं संभावनाओं के सभी द्वार खोल रहा हूँ।

92. हम अच्छे समय में हमेशा मुस्कुराते हैं, लेकिन अगर हम विपत्ति के समय मुस्कुराते हैं, तो वह ज्ञान है।

93. तुम किसी चीज़ पर जितना श्रद्धा (ध्यान) देते हो, वही उसकी कीमत होती है।

94. जो समय और जीवन को महत्व देता है, वह इन दोनों से परे चला जाता है।

95. सभी आनंदों का स्रोत होने के बावजूद, हम विस्मृत होकर बाहर भटक गए हैं, और हमने सुख की पहचान विभिन्न वस्तुओं से कर ली है। जीवन में, दुख (किसी भी वस्तु/व्यक्ति से) यह दर्शाने आता है कि सुख वहाँ मौजूद नहीं है। यह हमारी गलत दृष्टि है जो दुख को वास्तविकता प्रदान करती है। इसे समझना और पहचानना केवल कृपा के माध्यम से ही संभव है।

96. सम्मान की माँग करने से सम्मान नहीं मिलेगा। अपने आस-पास की हर चीज़ का सम्मान करने से आप सम्माननीय बनते हैं।

97. जब मैं 'कुछ नहीं' होता हूँ, तब जो शांति मिलती है, वह मैं 'कुछ हूँ' बनने पर कभी अनुभव नहीं हो सकती, चाहे वह ('कुछ हूँ') कितना भी महान क्यों न हो।

98. वास्तविक स्वतंत्रता शरीर, मन और अहंकार से स्वतंत्रता है, न कि शरीर, मन और अहंकार की स्वतंत्रता।

99. स्वयं को सत्य में रखते हुए परिस्थितियों का सामना करना और ज्ञान के अनुसार कार्य करना और उनसे सीख प्राप्त करना, आपके अभ्यास को संतुलित रखता है और उसे पूर्ण बनाता है।

100. सच्चा अध्ययन तब शुरू होता है जब शिक्षा (या उपदेश) समाप्त हो जाता है।

101. इस संसार में बोलने वाले बहुत हैं। चलने वाले दुर्लभ हैं। चलने वाले मौन रहते हैं।